प्राचीन भारत के प्रमुख शिक्षा केन्द्रों की शिक्षा व्यवस्था

(एक समीक्षात्मक अध्ययन)

इतिहास में पीएच.डी उपाधि हेतु
शोध प्रस्तावना

शोध निर्देशिका
JV'n डॉ. गीता सिंह

शोधार्थी :
JV'n प्रवीण चौबे
ENROLLEMENT NO. JVR-1/16/7018

मानविकी एवं समाज विज्ञान विभाग
प्रबंधन एवं मानविकी संकाय
ज्योति विद्यपीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर, भारत

जनवरी **2017**

प्राचीन भारत के प्रमुख शिक्षा केन्द्रों की शिक्षा व्यवस्था
(एक समीक्षात्मक अध्ययन)

---

(1) पृष्ठभूमि :

शिक्षा समाज की उन्नति के लिए एक आवश्यक तथा शक्तिशाली साधन है। शिक्षा ऐसा प्रकाश है जिसके द्वारा व्यक्ति की समस्त शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा अध्यात्मिक शक्तियों का विकास होता है, जिससे वह समाज का एक उत्तरदायी घटक तथा राष्ट्र का प्रखर चरित्रवान नागरिक बनकर समाज की सर्वांगीण उन्नति के लिए प्रेरित हो जाता है। दुर्भाग्य से आज की शिक्षा येनकेन प्रकारेण डिग्री प्राप्त करके व्यवसाय खोजन तक सीमित होकर रह गई है। सूचना प्रसारण को ही आज शिक्षा का एकमात्र लक्ष्य मान लिया गया है, जिसके कारण आज का युवा वर्ग हताशा का शिकार होकर भटक रहा है मानों अपनी ही लाश अपने कन्धे पर उठाए उद्देश्यहीन घूम रहा है। समाज में सारे विकार यह हताश, शिक्षित युवा ही उत्पन्न कर रहा है। संस्कारविहीन मानव अपराध वृत्तियों को जन्म दे रहा है। सर्वथा अन्धकार ही दिखाई पड़ता है। विश्व इतिहास यह बताता है कि जब सारे यूरोप में नैतिक अद्योपतन आया तो वहां के मनीषियों से पुरातन दार्शनिकों के दर्शन में से आधारभूत मूल्य खोजे और वहां विशाल पुनर्जागरण आन्दोलन खड़ा हुआ जिसने उनको पतन तथा विघटन की स्थिति से बचाकर सारे विश्व पर अपना साम्राज्य फैलाने वाली शक्ति बना दिया। भारत का पुनर्जागरण आन्दोलन भी जिसके पुरोधा राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द आदि माने जाते हैं, प्राचीन जीवन मूल्यों की ही खोज और उन पर आधारित समाज जागरण का आन्दोलन था। ऐसी स्थिति में यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि हम भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति का गहन अवलोकन करें कि कैसे वह मानव को सद्‌गुण सम्पन्न बना कर समाज को समस्त विकारों से मुक्त कराती रही

है और भारत अपने चरित्र बल से विश्व का मार्गदर्शन करता रहा है और उन्हीं मूल्यों को लेकर भारत का नवनिर्माण करें।

यह तो एक ऐतिहासिक सत्य है कि भारत आदिकाल से ही विश्व को अपने ज्ञान से आलोकित करता रहा है। प्राचीन इतिहास के अध्ययन से प्रतीत होता है कि पूर्वकाल में भारत राष्ट्र सभी प्रकार से उन्नत–अभ्युदय शिखर पर था। ज्ञान–विज्ञान, बल, बुद्धि, धन–धान्य, सुख सम्पत्ति, ऐश्वर्य, वैभव, शील, सदाचार, व्यापार–वाणिज्य, कारीगरी, उद्योग और कला–कौशल आदि प्रत्येक विषय में इस देश ने अत्यधिक विकास करके कल्पनातीत सामर्थ्य प्राप्त किया था। ऐसे अनुपम एवं अद्भुत शक्ति सामर्थ्य के प्राप्त होने का कारण यह था कि यहां के लोग ज्ञान परायण थे और शिक्षा केवल उदर पूर्ति के लिए नहीं अपितु मानव को मानवता सिखाने का साधन थी।

जब सारा विश्व अज्ञान अंधकार में भटकता था तब भारत के मनीषी उच्चतम ज्ञान का प्रसार करके मानव को पशुता से मुक्त कर, श्रेष्ठ संस्कारों से युक्त कर सच्चा मानव बनाते थे। संसार के सभी मनुष्यों को भारत के मनीषियों ने आह्वान किया कि वह यहाँ से श्रेष्ठ पुरुषों से अपने–अपने चरित्रानुसार शिक्षा ग्रहण करें क्योंकि शिक्षा से ही बौद्धिक तथा आध्यात्मिक उत्कर्ष सम्भव माना जाता रहा है। ज्ञान के क्षेत्र में भारत विश्वभर में अग्रणी रहा है। यहाँ के मनीषियों ने उद्घोष किया था कि–

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

(मनुस्मृति 2.20)

विश्व के सभी देशों से शिक्षार्थी विद्यार्जन करने भारत आते रहे हैं और विभिन्न विषयों का ज्ञान लेकर पृथ्वी के हर भाग को प्रकाशित करते रहे हैं। ज्ञान अथवा विद्या अर्जन से व्यक्ति का कर्म और आचरण परिष्कृत होता है। ऐसे प्रमाण

उपलब्ध हैं कि भगवान वेद व्यास, भृगु, भारद्वाज, वशिष्ठ, च्यवन, ज्ञानवल्क्य, अंगिरा जैसे महाशाल कुलपतियों के आश्रम में दस–दस हजार बालक सब दिशाओं से आकर, ब्रह्मचर्य में रहकर, संयम–नियम का पालन, सत्य–सदाचार का सेवन और गुरु तथा गायों की सेवा करते हुए यथाधिकार संस्कार कराकर विद्या–ज्ञान का उपार्जन करते थे। भारतीय शिक्षा प्रणाली के आदर्श वाक्य के रूप में वेद का अनुशासन है कि ''विशेष ज्ञानी, ज्ञानामृत से प्रतिष्ठित व्यक्ति अज्ञानियों में बैठकर उन्हें ज्ञान प्रदान करें। (ऋग्वेद–7.4.4)''

जिन अट्ठारह विद्याओं का स्वरूप महर्षि याज्ञवल्क्य आदि ने निर्दिष्ट किया है वह यह है–

अयं कवि रकविष, प्रचेता, मर्तेष्व ग्निरमतो निधायि,
पुराण न्याय मीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाःस्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश,
उपवेद सहित ह्येता विद्या ह्याष्टादश स्मृताः।।

वेदवर्णित पुराण साहित्य, न्यायशास्त्र मीमांसा आदि दर्शन मनु–याज्ञवल्क्य आदि धर्मशास्त्र, शिक्षा व्याकरण, कल्प ज्योतिष, छन्द, निरुक्त, यह छःवेदांग, चार वेद (ऋक् यजु, साम, अथर्व) तथा चार उपवेद (आयुर्वेद, फुनर्वेद, गन्धर्व वेद तथा शिल्यादि वेद। यह सब मिलाकर अट्ठयारह विद्याओं का अर्जन गुरु के निर्देशन में अनुष्ठानपूर्वक अभ्यास करके सम्पादन ब्रह्मचारी सम्पादित किया करते थे जिससे आजीविका चलान में कोई परेशानी नहीं होती थी और प्रौढ़ावस्था तक आते–जाते अपने विषय के निपुण ज्ञाता बन जाते थे।

त्याग, वृत्तिसम्पन्न तथा धन की तृष्णा से परे आचार्य ही भारतीय शिक्षा पद्धति में सच्चा शिक्षक माना गया है वह ब्रह्म वर्चस्व से युक्त होकर संग्रह की वृत्ति से नितान्त उपरत रहता था।

शिक्षा को व्यवसाय और धनार्जन का साधन नहीं माना जाता था

अपितु एक जीन का मिशन समझा जाता था। प्राचीन भारतीय शिक्षा के उद्देश्य केवल सूचना प्रसारण करके नौकरी प्रप्त करने तक सीमित नहीं थे। मनुष्य की धार्मिक वृत्तियों का उत्थान, मनुष्य के चरित्र तथा आचरण का उत्थान उसके व्यक्तित्व का विकास, सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने में आस्था अर्थात् धर्म भाव तथा संस्कारयुक्त जीवन का उत्थान करके सद्गुणों का संचार करना था।

भारत में प्राचीन काल से ही शिक्षा का स्वरूप अत्यंत ज्ञानपरक सुव्यवस्थित और सुनियोजित रहा है, जिसके लिए बड़े–बड़े शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की गयी थी। भारत की प्राचीन शिक्षा ने भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में ऐसे ज्ञान आविष्कृत किये जिनके ऋणी आज भी विश्व में दार्शनिक तथा वैज्ञानिक हैं। प्राचीन काल में भारत को बौद्धिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में विश्व में जो गौरव प्राप्त था उसका श्रेय भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति को ही है। अपनी विशिष्ट शिक्षा–पद्धति के कारण ही भारत ने अनेक शताब्दियों तक न केवल विश्व का सांस्कृतिक नेतृत्व किया, अपितु उद्योग–धन्धों, कला–कौशल तथा विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में भी अग्रणी रहा।

प्राचीन काल में प्रायः प्रत्येक आचार्य की सर्वप्रथम कामना होती थी कि मेरे शिष्यों में से अधिक से अधिक विद्वान् तथा संस्कारवान बनकर मेरे सुयश को प्रख्यात करें और वे भी आचार्य बनकर अन्य शिष्यों को पढ़ायें, जिससे शिष्य–परम्परा से मेरा ज्ञान अमर रहे। ऐसी परिस्थिति में योग्य शिष्यों का चुनाव करने में आचार्य सदैव सावधान रहते थे। आचार्य की योग्यता इस बात में भी मानी जाती थी कि वह योग्य शिष्यों को ग्रहण करें। वैदिक काल में जिन विद्यार्थियों की अभिरुचि अध्ययन के प्रति होती थी, आचार्य प्रायः उन्हीं को अपनाते थे। जिन विद्यार्थियों की प्रतिभा ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ होती थी, उन्हें हल–फाल या ताने–बाने के काम में लगाना पड़ता था। (ऋग्वेद 10.71.9) बालकों की मनोवृत्ति परखने की रीति उस समय थी। मनोवृत्ति देखकर उसे समुचित व्यवसाय में लगाया जा सकता

था। (ऋग्वेद 9.112.1) उपनिषदों में विद्यार्थी का अपनाने केक पहले उसकी परीक्षा करने के विषद वर्णन मिलते हैं। साधारणतः स्मृतियों का मत है कि केवल योग्य विद्यार्थियों को ही शिक्षा देनी चाहिए। (मनुस्मृति 2.113; हारीत 1.20) इस प्रकरण में योग्यता का अर्थ विद्यार्थी की प्रतिभा और सच्चरित्रता है। पौराणिक युग में विद्याध्ययन के अधिकारी की योग्यता का मानदण्ड पूर्ववत् मिलता है। कृतज्ञ, द्रोह न करने वाले, मेधावी, गुरु बनाने वाले, विश्वासपात्र और प्रिय व्यक्ति, अध्यापन के योग्य समझे जाते थे। बौद्ध संस्कृति में विद्यार्थी का सदाचारी होना आवश्यक गुण माना जाता था। तत्कलीन आचार्यों का विश्वास था कि दुष्ट स्वभाव का शिष्य कड़े जूते के समान है, जो क्रय किये जाने पर भी पैर को काटता है। दुष्ट शिष्य आचार्य से जो ज्ञान ग्रहण करता है, उससे आचार्य की जड़ काटता है।

सुदूर प्राचीन काल से लेकर आज तक भारत में अध्यापन पुण्य कार्य माना गया है। प्रायः विद्यालय बड़े नगरों में नहीं होते थे। विद्यालयों की स्थिति साधारणतः नगरों से दूर वनों में होती थी। विद्यालय प्रायः वहीं होते थे, जहाँ आचार्यों की गौओं को चरने के लिए घास का मैदान होता था, हवन की समिधा वन के वृक्षों से मिल जाती थी और स्नान करने के लिए निकट ही कोई सरोवर या सरिता होती थी। उपनिषदों में ब्रह्मज्ञान के शिक्षक ऋषियों की आवास–भूमि अरण्य को ही बताया गया है। इन्हीं ब्रह्मज्ञानियों के समीप ब्रह्मज्ञान के विद्यार्थी पहुँचते थे। लगभग पाँचवीं शती ई.पू. के लगभग से आचार्यों के विद्यालय में से अनेक आश्रम के स्थान पर मन्दिर बन गये। उनको यदि विद्या मन्दिर कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी। ह्वेनसाँग ने अपनी भारत–यात्रा के वर्णन में तत्कालीन भारत के प्रमुख महाविद्यालयों का वर्णन किया है। कामरूप (आसाम) की शिक्षण–संस्थाओं की चर्चा करते हुए उसने लिखा है– ''कामरूप वैदिक शिक्षा का केन्द्र है। राजा भास्कर वर्मा ने स्वयं कामरूप में विद्यालय की प्रतिष्ठा की है। इस विद्यालय की ख्याति इतनी बढ़ गई है कि दूर–दूर से विद्यार्थी शिक्षा पाने के लिए

वहाँ आते हैं। काशी, कलिंग, उज्जयिनी, चित्तौड़ आदि प्रदेशों के विद्यार्थी यहाँ अध्ययन करते हैं। राजा और प्रजा दोनों विद्या–व्यसनी थे।'' ह्वेनसाँग ने जिस प्रकार विहारों के साथ भिक्षुओं की संख्या बतलाई है, उसी प्रकार देव–मन्दिरों के साथ तीर्थिकों की संख्या का परिगणन किया है।

समय के साथ–साथ शिक्षा का विस्तार हुआ और भारतीय संस्कृति एवं दर्शन की विजय–पताका जावा, सुमात्रा, स्याम, चीन, जापान, कोरिया, तिब्बत तथा मध्य एशिया के देशों में सहस्रों वर्षों तक लहराती रही। भरतीय कला भारत की सीमा में ही आबद्ध नहीं थी, इसके आलोक से पूर्वी एशिया के समस्त देश जगमगा उठे थे। वास्तव में भारतीय कला के पूर्ण दर्शन भारत के बाहर आज भी उपलब्ध हैं। भौतिक ज्ञान के क्षेत्र में भारतीय विद्वानों की ख्याति सुदूर देशों में फैली हुई थी। अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति, औषध–विज्ञान आदि विषयों में भारत नवीन ज्ञान का अन्वेषक तथा नवीन विचारों का प्रवर्तक था।

सामाजिक क्षेत्र में भी भारतीय शिक्षा–पद्धति ने प्रतिष्ठित मान्यताओं की व्यवस्था को सफल बनाया। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में वैयक्तिक उत्कर्ष सामाजिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं की आधारभूमि पर ही पल्लवित होता रहा। प्राचीन विद्या–केन्द्रों में शिक्षित प्रत्येक व्यक्ति / नागरिक अपने वैयक्तिक उत्कर्ष की परिणति पाता था। अपने परिवार, अपने ग्राम, अपने व्यावसायिक समुदाय, अपने समाज के प्रति दायित्वों का पालन करना, प्राचीन भारत का नागरिक अपना धर्म समझता था। वास्तव में प्राचीन भारत की सांस्कृतिक समृद्धि का मूल कारण यहाँ की सामाजिक सुव्यवस्था थी जो कि देश की विशिष्ट शिक्षा–पद्धति के द्वारा निरन्तर परिपुष्ट होती रहती थी। प्राचीन भारत की शिक्षा सामाजिक सुव्यवस्था की पर्यायवाची थी।

भारतवर्ष में प्राचीन समय में शिक्षा–पद्धति का विकास वैज्ञानिक रूप से हुआ था। शिक्षा के विभिन्न विषय प्राचीन शिक्षाविदों ने निर्धारित किये थे। उन

विषयों को विभिन्न विभागों में विभक्त भी किया था। वर्तमान शिक्षा–पद्धति के तुल्य ही प्राचीन समय की शिक्षा–संस्थाओं में भी शिक्षा के विषयों को निर्धारित करके उनके विभाग निश्चित किये गये थे। 'महाभारत' में अनेक इस प्रकार के आश्रमों का वर्णन है, जहाँ शिक्षा के विविध विषयों के अध्यापन का प्रबन्ध था। यहाँ योग्य आचार्य छात्रों को विद्याध्यन कराते थे। इनकी कीर्ति को सुनकर दूर–दूर से छात्र विद्याध्ययन के लिये आते थे। यहाँ का सर्वोच्च अधिकारी (आचार्य) कुलपति कहलाता था। उसके अधीन तथा निरीक्षण में रहते हुए विविध विभागों के विभागाध्यक्ष तथा विषयों के विशेषज्ञ छात्रों को समुचित शिक्षा देते थे। आधुनिक परिभाषा में इन विभागों को स्थान या संकाय (Faculty) कहा जाता है।

इस शोध प्रबन्ध में इस तथ्य पर भी विचार किया गया है कि प्राचीन भारत में विकसित शिक्षा–केन्द्रों की स्थिति क्या थी और कौन–से विश्वविद्यालय और शिक्षा–केन्द्र उस युग में अधिक प्रतिष्ठित थे। प्राचीन भारत में शिक्षा–पद्धति मुख्य रूप में गुरुकुलों के रूप में विकसित हुई थी। छात्र यहाँ स्थायी रूप में गुरुकुल में आचार्य और गुरु के संरक्षण में रहते थे।

महाभारत युद्ध के अनंतर अधिक विशाल केन्द्रीय विद्यालयों का विकास हुआ। यहाँ विविध विषयों के आचार्यों के पीठ बन गये। इनकी स्थिति विश्वविद्यालयों के तुल्य थी। विशेष रूप से नालंदा एवं तक्षशिला के विश्वविद्यालय समस्त विश्व में अपनी कीर्ति के तुल्य थी। विशेष रूप से नालन्दा एवं तक्षशिला के विश्वविद्यालय समस्त विश्व में अपनी कीर्ति के लिए विख्यात रहे। नालंदा के विश्वविद्यालय का आज भारत सरकार जीर्णोद्धार करने के लिए कृत संकल्प है क्योंकि इस विश्वविद्यालय ने सारे एशिया को ज्ञान की ज्योति प्रदान की थी और तक्षशिला जैसा विशाल ग्रंथालय कहीं और सारे विश्व में उपलब्ध नहीं था। सारा पाश्चात्य जगत आज भी इस स्तर का और इतना विशाल कोई शिक्षा केन्द्र स्थापित नहीं कर पाया। वर्तमान शोधकर्त्ता ने इन सारे शिक्षा केन्द्रों की शिक्षा पद्धति, इनकी प्रशासनिक

व्यवस्था और इनके आर्थिक कारणों का गहन अध्ययन करके इस आवश्यकता को पूर्ण किया है जिसकी आज शिक्षा जगत् में बहुत कमी दिखाई दे रही थी। आज की विकृत शिक्षा प्रणाली के सारे दोषों को दूर करके ऐसे समाज का निर्माण करने में सहायक सिद्ध होगी, जो मानव मूल्यों का प्रतिपादन करके विश्व का गौरव बन जाएगा। शोधकर्त्ता को यह पूर्ण विश्वास है कि यदि उस प्राचीन शिक्षा पद्धति को पुनर्जीवित करके तथा उसको आज की नयी वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी के साथ जोड़ दिया जाए। तो एक नये समाज का निर्माण किया जा सकता है जिसकी आज सरा विश्व आकांक्षा कर रहा है। मैं आशा करता हूँ कि इस शोध प्रबन्ध के द्वारा मैं अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त कर लूँगा जिसको लेकर इस शोध कार्य को सम्पन्न किया गया है।

(2) शोध विषय एवं अध्ययन क्षेत्र :

वर्तमान समय में ज्ञान के प्रसार के लिए विद्याध्ययन के लिए शिक्षा को वितरित करने के लिए अनेक विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय स्थापित किए जा चुके हैं और भविष्य में इनका विस्तार किए जाने की योजनाएँ हैं। इनका मुख्य कार्य है शिक्षा को प्रदान करना और प्रसार करना। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है–प्रत्येक मनुष्य के चरित्र का निर्माण कर उसको स्वयं अपने लिए, परिवार के लिए, समाज के लिए और देश के लिए उपयोगी बनाना। इससे ही लोक में शान्ति, संतोष और सद्भावना का प्रसार संभव है। शिक्षित मनुष्य अपना कल्याण करता है, समाज का कल्याण करता है, देश का कल्याण करता है और समग्र विश्व में सुख शान्ति का प्रसार करता है। परन्तु वर्तमान समय में शिक्षा के प्रसार के साथ–साथ शान्ति नष्ट होती जा रही है, परस्पर प्रेम तथा सद्भाव समाप्त हो रहा है, संतोष का लोप हो रहा है और चरित्र भ्रष्ट होता जा रहा है। शिक्षित मनुष्य भी अपने आपको जगत के संघर्षों के योग्य नहीं बना पा रहा है।

आज विद्याध्ययन करते हुए, शिक्षा को प्राप्त करते हुए मनुष्य ने इस संसार में ज्ञान–विज्ञान की उन्नति में जितनी प्रगति की है, उतना ही अधिक असन्तोष, कलह, द्वेष आदि तत्त्वों की दिन–प्रतिदिन वृद्धि हो रही है।

ऐसे में भारत के प्राचीनकाल की शिक्षण–पद्धति का आदर्श उस काल के समावर्तन संस्कार के अवसरों पर आचार्य द्वारा दिए जाने वाले उपदेशों से अभिव्यक्त होता है। उसका विस्तृत स्वरूप तैत्तरीयोपनिषद् का शिक्षावली में निहित है। वर्तमान समय में भी अनेक विश्वविद्यालयों में दीक्षान्त समारोह के अवसरों पर कुलपति द्वारा नए स्नातकों के समक्ष इस उपदेश को प्रस्तुत किया जाता है। प्राचीन काल में लोग विदेशों से भारत शिक्षा ग्रहण करने हेतु आते थे परन्तु वे क्या कारण हैं कि आज इसके विपरीत भारत के लोग विदेशों में उच्च शिक्षा ग्रहणी करने के लिए जाने लगे। क्या भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि यह एक सर्वांगपूर्ण लोक कल्याणकारी शिक्षा पद्धति थी। इसमें ज्ञान–विज्ञान–अध्यात्म इन सभी का अद्‌भुत समावेश था। यह जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ थी।

अतः वर्तमान काल की परिस्थितियों एवं संसाधनों को देखते हुए प्राचीन काल की शिक्षण संस्थाओं की शिक्षा व्यवस्था की प्रासंगिकता एवं आवश्यकता के परिप्रेक्ष्य सर्वथा इस नवीन शोध समस्या का चयन किया गया है जो निम्नलिखित है–

'प्राचीन भारत के प्रमुख शिक्षा केन्द्रों की शिक्षा व्यवस्था (एक समीक्षात्मक अध्ययन)'

(3) शोध के उद्देश्य :

इस शोध का मुख्य उद्देश्य प्राचीन भारत के प्रमुख शिक्षा केन्द्रों की शिक्षा व्यवस्था का समीक्षात्मक अध्ययन करते हुए वेद–धर्मशास्त्र तथा पुराण

साहित्य में निरुपित तत्त्वों का समीक्षापूर्ण विवेचन करना है। वैदिक वाङ्मय में निरुपित शिक्षा पद्धति की चर्चा के अनन्तर वेद अनुगामी शास्त्रों में शिक्षा के विवेचनार्थ प्राचीन शिक्षा पद्धति की विशद् रूप में चर्चा कीजाएगी। इस अनुसंधान प्रबन्ध के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. अनुसंधान का उद्देश्य अतीत की घटनाओं के तथ्यों का विश्लेषण करके कुछ विचारधाराओं को तथा उनके क्रमिक विकास को विश्लेषण के आधार पर खोजना है।
2. शोधकर्त्ता ने तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर कुछ प्रमुख विचारधाराओं और उनके क्रमिक विकास को खोजने के उपरांत उनके आधार पर वर्तमान समस्याओं की व्यवस्था प्रस्तुत की है।
3. इस अनुसंधान का उद्देश्य अतीत के आधार पर वर्तमान को समझने का सार्थक प्रयास किया गया है अथवा अतीत के प्रमुख शिक्षा केन्द्रों की शिक्षा व्यवस्था के आधार पर वर्तमान शिक्षा पद्धति की तथा शिक्षा केन्द्रों तथा शिक्षण संस्थाओं की समस्याओं का मूल्यांकन करना है।
4. अनुसंधान का उद्देश्य अतीत, वर्तमान और भविष्य में सम्बन्ध स्थापित कर वैज्ञानिकों की जिज्ञासा को शान्त करना है।
5. इस अनुसंधान का उद्देश्य अनुसंधान समस्या के ऐतिहासिक तथा दार्शनिक महत्त्व को समझना है।
6. आगमन के सिद्धान्त के आधार पर अतीत की उन सामाजिक शक्तियों की खोज करना है जिन्होंने वर्तमान को एक विशेष स्वरूप प्रदान किया है।
7. शोध का उद्देश्य अतीत के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान घटनाक्रमों का अध्ययन कर वर्तमान और भविष्य में इनकी सार्थकता को ज्ञात करना है।

8. अनुसंधान का मूल उद्देश्य यह भी है कि अनुसंधान के माध्यम से यह अध्ययन किया गया है कि वर्तमान में जो शिक्षण संस्थाएँ हैं उनकी शिक्षा व्यवस्था किस प्रकार की होनी चाहिए।

मानव व्यवहारों के परिवर्तन में शिक्षणाभ्यास की प्रक्रिया का अभूतपूर्व योगदान है, जिसके कारण अनादिकाल से लेकर अद्यतन के विभिन्न दार्शनिकों ने सामाजिक आवश्यकतानुसार शिक्षा तत्त्वों के विवेचन द्वारा मानव जीवन में उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डाला है। शिक्षा ही जीवन है और जीवन ही शिक्षा है। दोनों के इस अभेद्य सम्बन्ध को नकारा न जाने के कारण ही सा विद्या या विमुक्तये अथवा सा विद्या या ब्रह्मगतिप्रदा के द्वारा विद्या (ज्ञान) के महत्त्व को पूर्वाचार्यों ने विवेचित किया है, जिसका बोध हमें ज्ञान की उस विधा द्वारा होता है, जिसमें व्यक्ति के वैयक्तिक गुणों की अभिवृद्धि के साथ–साथ उसके सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय कर्त्तव्यों को निश्चित करना रहा है। निश्चय ही यह अवस्था जो हमें वर्तमान के रूप में प्राप्त हुई है, वह अनायास ही नहीं है, अपितु उसका अपना एक निश्चित क्रम और विस्तृत इतिहास है, जिनके जानने संरक्षित करने और वृद्धि को प्राप्त कराने के लिए अनुभवजन्य ज्ञान को लिपि के रूप में संचित करने की आवश्यकता है, जो केवल शिक्षा रूपी उपक्रम जिसमें स्वाधाय–प्रवचन निदध्यास की प्रक्रिया को महत्ता प्रदान की गई है, जिसमें यावज्जीवमधीते विप्रः की दृढ़संकल्पना का विधान किया गया है। इस दृढ़ संकल्पना में निहित गूढ़ार्थ सत्य को जानने के लिए सृष्टि के आरम्भ से वर्तमान तक की संचित ज्ञान निधि का अध्ययन करना अनिवार्य हो जाता है, जो मूल्यांकनपरक होने के कारण इस बात का द्योतक हो गया है कि आधुनिक शिक्षा–शास्त्र पर वैदिक शिक्षण विधा का कितना प्रभाव है? अथवा आधुनिक शिक्षा–शास्त्र वैदिक शिक्षण परम्परा से अनुप्राणित है या नहीं?

आज भारत तथा अन्यत्र उस वर्तमान शिक्षा पद्धति के विकल्प की गम्भीर खोज तलाश है, जो कि पुस्तक केन्द्रित, पाठ्यक्रम केन्द्रित तथा परीक्षा

केन्द्रित की चारदीवारी में बन्द हो गयी है। आज मानव की अन्तरात्मा की यह पुकार है कि हम शिक्षा पद्धति को एसा बनाएं जो कि ज्ञानोन्मुख, मूल्योन्मुख हो तथा जिसमें बच्चे के सर्वविध विकास का स्थान हो। इस बात में संदेह नहीं है कि इस खोज के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ की सामग्री शोध अध्ययन के उद्देश्यों को पूर्ण करन में समर्थ होगी।

(4) शोध कार्य की आवश्यकता एवं महत्त्व :

भारतवर्ष में प्राचीन समय में शिक्षा–पद्धति का विकास वैज्ञानिक रूप से हुआ था। शिक्षा के विभिन्न विषय प्राचीन शिक्षाविदों ने निर्धारित किए थे। उन विषयों को विभिन्न विभागों में विभक्त भी किया था। वर्तमान शिक्षा–पद्धति के तुल्य ही प्राचीन समय की शिक्षा–संस्थाओं में भी शिक्षा के विषयों को निर्धारित करके उनके विभाग निश्चित किये गये थे। यहाँ इस तथ्य पर भी विचार करना उपयुक्त होगा कि प्राचीन भारत में विकसित शिक्षा–केन्द्रों की स्थिति क्या थी और कौन से विश्वविद्यालय और शिक्षा–केन्द्र उस युग में अधिक प्रतिष्ठित थे। प्राचीन भारत में शिक्षा–पद्धति मुख्य रूप से गुरुकुलों के रूप में विकसित हुई थी। छात्र यहां स्थायी रूप से गुरुकुल में आचार्य और गुरु की संरक्षा में रहते थे।

कोई भी देश और समाज अपनी प्राचीन परम्पराओं और इतिहास से कट कर जीवित नहीं रह सकता। वर्तमान युग की आवश्यकताओं को अपनी प्राचीन परम्परओं से संयुक्त करने तथा उनको आवश्यकता के अनुरूप ढालने में ही व्यक्ति और समाज की उन्नति और गौरव निहित है। भारत देश में यहाँ के निवासियों का अपने सर्वांगीण विकास का इतिहास है और गौरवमयी परम्पराएँ हैं। यहाँ की विचारधारा राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और शैक्षणिक गतिविधियों की सम्मानास्पद वैज्ञानिक है। तथापि वर्तमान युग की आवश्यकताओं को हम इसमें संयोजित अवश्य कर सकते हैं। यही अवस्था शिक्षा के क्षेत्र की है।

अपनी प्राचीन शिक्षा संस्थाओं से हमारी वर्तमान शिक्षा संस्थाएँ समृद्ध होनी चाहिए। उससे कम नहीं होनी चाहिए। हजारों वर्षों के विदेशी शासन ने संभवतः हमारे स्वाभिमान को नष्ट करने में महान योग दिया है। इस सबका कारण हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धति का दोषपूर्ण होना ही है। सारी व्यवस्थाओं का संचालन वर्तमान शिक्षा पद्धति से शिक्षित अधिकारी ही करते हैं। इस शिक्षा पद्धति में न तो कर्त्तव्य पालन की शिक्षा दी जाती है और न ही नैतिक शिक्ष। भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति के प्रति भारतीयों के हृदयों में औत्सुक्य, आकर्षण, अभिलाषा और उत्साह है। सैंकड़ों गुरुकुल स्थापित होने तथा हजारों की संख्या में छात्रों के प्रविष्ठ होने से यह स्पष्ट है कि इस प्राचीन गुरुकुल शिक्षा–पद्धति की देश को, समाज को और व्यक्तियों को आवश्यकता है और यह देश में सफल भी हो सकती है। गुरुकुल कांगड़ी को स्थापित हुए एक शताब्दी के लगभग समय व्यतीत हो गया है तथा अब यह एक विशाल और महत्त्वपूर्ण शिक्षा केन्द्र है। यह आर्यसमाज के नियंत्रण में है।

यद्यपि आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध से प्रभावित अधिकांश भारतीय शिक्षाविद् अपने देश की प्राचीन शिक्षा–पद्धति को उपेक्षा की दृष्टि से देख रहे हैं तथा भारतीय विश्वविद्यालयों में इस शिक्षा–पद्धति के आदर्शों और मूलभूत विशेषताओं को स्मरण भी नहीं किया जाता अथवा स्मरण करने पर भी उपेक्षा और अवहेलना की जाती है, तथापि इसमें कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जो स्वाभिमानी और देशप्रेमी भारतीयों को बहुत अधिक आकृष्ट करती है। वे मानते हैं कि भारतीय बालकों की सर्वांगीण उन्नति के लिए वर्तमानकालीन शिक्षा में प्राचीन शिक्षा पद्धति की अनेक विशेषताओं को प्रविष्ट कराना आवश्यक है। यद्यपि हम इतिहास के रथ को पीछे नहीं मोड़ सकते, तथापि अपने को हम अतीत से सर्वथा पृथक् भी नहीं कर सकते। हम जिस मार्ग पर चलकर आये हैं, उसका अवलोकन प्राचीन शिक्षा–पद्धति की अच्छी और उपयोगी विशेषताओं को ग्रहण कर उनको

वर्तमान शिक्षा–पद्धति में प्रवष्टि अवश्य कर सकते हैं।

प्राचीन समय में जिस शिक्षा–पद्धति ने भारतवर्ष को विश्व में मूर्धन्य स्थान प्रदान किया था, जिसका अवलोकन कर और अनुभव करके विश्व को चमत्कृत हो गया था, जिसके माध्यम से विद्याध्ययन करने के लिये विश्व भर के विद्याप्रेमी इस भारत देश में आकर गुरुजनों के चरणों की सेवा करते थे, उनको हमें अवश्य मानना चाहिये। हमें उसका जान कर और समझ कर गौरव का अनुभव करना चाहिए। हमें विश्व में किसी के समक्ष नतमस्तक होने की आवश्यकता नहीं है। हम प्राचीन गौरव का स्मरण कर प्राचीन शिक्षा–पद्धति के गुणों और विशेषताओं का वर्तमान शिक्षा–तन्त्र में प्रवेश करके विश्व में भारत को पुनः शिरोमणि बनाने में समर्थ हैं। इस विषय में इस शोध कार्य की आवश्यकता एवं औचित्य और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। इसी परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर इस शोध विषय पर आगामी अध्यायों में समीक्षात्मक दृष्टि डाली जा रही है।

(5) शोध विधि :

प्रस्तुत शोध का स्वरूप प्राचीन की वर्तमान में प्रासंगिकता है अतः यह ऐतिहासिक है। शिक्षा शास्त्र में ऐतिहासिक अनुसंधान बहुत रहा है। इस अनुसंधान विधि से बहुत महत्त्वपूर्ण अनुसंधान कार्य हुए हैं। इस विषय पर कुछ विद्वानों के विचार इस प्रकार हैं–

ह्विटनी (1963) के अनुसार, ''ऐतिहासिक अनुसंधान विगत या पूर्व अनुभवों को उसी ढंग से विश्लेषण करता है। इसका उद्देश्य भूतकालीन घटना–क्रम, तथ्य एवं अभिवृत्तियों के आधार पर ऐसी सामाजिक समस्याओं का चिन्तन एवं विश्लेषण करना है जिनका समाधान नहीं मिल सका है। यह मानव–विचारों एवं क्रियाओं के विकास की दिशा की खोज करता है। जिसमें द्वारा सामाजिक क्रियाओं के लिए आधार प्राप्त हो सके।''[1]

वेस्ट (1963) के अनुसार, ''ऐतिहासिक समस्याओं के अन्वेषण के लिये वैज्ञानिक अनुसन्धान विधियों का उपयोग करके अध्ययन करना ही ऐतिहासिक अनुसंधान है। इसके अन्तर्गत समस्याओं का रूप निर्धारित करना, उनका सीमांकन, परिकल्पनाओं का निम्रण, तथ्यों का संग्रह, तथ्यों का संगठन, प्रमाणीकरण, वैधीकरण और प्रदत्त विश्लेषण, परिकल्पनाओं की जाँच तथा ऐतिहासिक विवरण लिखने का कार्य होता है। यह सभी पद अतीत को नये ढंग से समझने तथा वर्तमान एवं भविष्य के लिये इसकी क्या सार्थकता है। इसे जानने में मार्गदर्शन करते हैं।''[2]

करलिंगर (1978) के अनुसार, ''ऐतिहासिक अनुसन्धान अतीत की घटनाओं, विकास क्रमों तथा विगत अनुभूतियों का तर्क संगत अन्वेषण है। इससे अतीत की सूचनाओं एवं सूचना सूत्रों के सम्बन्ध में प्रमाणों की वैधता का सावधानीपूर्वक परीक्षण किया जाता है और परीक्षा किये गये प्रमाणों की सावधानीपूर्वक व्याख्या की जाती है।''[3]

यंग (1966) के अनुसार, ''ऐतिहासिक पद्धति, आगमन के सिद्धान्त के आधार पर अतीत की उन सामाजिक शक्तियों की खोज है जिन्होंने वर्तमान को एक विशेष रूप प्रदान किया है।''[4]

शोधकर्त्ता ने प्रस्तुत शोध अध्ययन में समस्या का चुनाव तथा समस्या का सीमा निर्धारण किया है। अध्ययन की परिकल्पना का निर्माण कर सम्बन्धित तथ्यों का संग्रह कर उनकी प्रामाणिकता का पूरा ध्यान रखा है। तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर परिकल्पनाओं की जाँच की है और उनके परिणामों का निष्कर्ष प्रस्तुत किया है।

(6) सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन :

भारत में किए गए शोध से सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन :

करलिंगर (1978) ने लिखा है कि प्राथमिक स्रोत द्वारा ऐतिहासिक अनुसन्धान के सम्बन्ध में तथ्य या प्रदत्त प्राप्त होते हैं। करलिंगर के ही शब्दों में ''प्राथमिक स्रोत एक ऐतिहासिक प्रदत्त का मूल भण्डार होता है यह किसी एक महत्त्वपूर्ण अवसर पर अभिलेख होता है या एक प्रत्यक्षदर्शी द्वारा यह घटना का विवरण होता है, यह फिर एक फोटो अथवा किसी संगठन की बैठक का विस्तृत विवरण आदि होता है।''[5]

प्रस्तुत शोध समस्या के चयन हेतु अनुसंधानकर्त्ता ने सम्बन्धित साहित्य और जिन शोधकार्यों का अध्ययन किया है। वे इस प्रकार है–

प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्राची ज्योति Digest of Indological प्राच्यविद्या संकाय कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से लगभग 47वर्षों से प्रकाशित हो रही है। इसमें विभिनन विश्वविद्यालयों से प्रकाशित पत्रिकाओं के शोध–पत्रों की समीक्षा कीजाती है। यह प्रत्येक वर्ष में जून एवं दिसम्बर माह में दो बार प्रकाशित होती थी। कुछ वर्षों से यह वर्ष में एक ही बार प्रकाशित होने लगी। तदुपरान्त अब कुछ वर्षों से यह तीन या चार वर्षों में भी एक बार ही प्रकाशित होती है। अब इसमें विभिन्न विश्वविद्यालयों से जितनी भी सूचना मिल जाये उसी के आधार पर शोधकर्त्ता, शोधविषय, शोधवर्ष एवं विश्वविद्यालयों के नाम सहित पूरा विवरण मिलता है। प्रस्तुत लघु शोध–प्रबन्ध में यथासम्भव जितनी भी सूचनाएँ उपलब्ध हो पाई हैं, उन्हीं के आधार पर इसको पूर्ण करने का प्रयास किया गया है। साथ ही यह भी कहना उचित होगा कि कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में प्राचीन शिक्षा से सम्बन्धित प्राप्तव्य शोधग्रन्थों की सामग्री को ही सारांश रूप में लिखा गया है, अन्यों का केवल नामोल्लेख परिशिष्ट में संदर्भ ग्रन्थ सूची के बाद किया गया है।

इसी प्रकार भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका जो भारतीय शिक्षा शोध संस्थान, लखनऊ से प्रकाशित प्रमाणिक शोध पत्रिका है इसमें भी शिक्षा से सम्बन्धित शोध कार्यों के विवरण प्रकाशित होते हैं। प्रस्तुत शोध अध्ययन में वहाँ

से भी सामग्री एकत्र की गई है। प्राचीन भारत में प्रस्तुत विषय से सम्बन्धित लघु शोध एवं शोध प्रबन्ध का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार से है।

प्राथमिक स्रोत :

अनुसंधान कार्य में प्राथमिक स्रोत द्वारा सामग्री को संकलित किया गया है जो इस प्रकार हैं–

1. शर्मा, रामनाथ, भारतीय जीवन दर्शन एवं शिक्षा, भारतीय शिक्षा शोध संस्थान, सरस्वती कुंज, निराला नगर, लखनऊ (2007)
2. जायसवास, सीताराम, हिन्दू चिन्तन और शिक्षा, भारतीय शिक्षा शोध संस्थान, सरस्वती कुंज, निराला नगर, लखनऊ (2007)
3. पाण्डेय, प्रकाश नारायण, प्राचीन भारतीय शिक्षा का पाठ्यक्रम एवं विधियाँ, भारतीय शिक्षा शोध संस्थन, सरस्वती कुंज, निराला नगर, लखनऊ (2007)
4. पाण्डेय, केशव प्रसाद, ऋग्वेद में शिक्षा, भारतीय शिक्षा शोध संस्थान, सरस्वती कुंज, निराला नगर, लखनऊ (2007)

द्वितीय स्रोत :

प्रस्तुत शोध से सम्बन्धित अन्य लेखकों एवं विद्वानों के विचारों, सूचनाओं एवं उनके द्वारा लिखे ग्रन्थों को द्वितीय स्रोत के रूप में संकलित किया गया है। इसमें कुछ प्रमुख द्वितीय स्रोत इस प्रकार हैं–

1. कृष्णमूर्ति, जे. : शिक्षा केन्द्रों के नाम पात्र, रामकृष्ण मिशन, नई दिल्ली।
2. शर्मा, शंकर दयाल : शिक्षा के आयाम, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली (1995)
3. कृष्ण कुमार : शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली (1998)
4. हरिशचन्द्र व्यास : हम और हमारी शिक्षा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर (2001)
5. राजपूत, जगमोहन सिंह : शिक्षा एवं इतिहास परिवर्तन की चुनौतियाँ, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली (2006)
6. कृष्णामूर्ति, जे., शिक्षा क्या है?, राजपाल एण्ड संस, नई दिल्ली (2007)

7. भास्कर मिश्र, वैदिक शिक्षा पद्धति, महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद–विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (2003)
8. कृष्ण कुमार :प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति, सरस्वती सदन, सफदरगंज एन्क्लेव, नई दिल्ली (1999)

प्रस्तावित शोध प्रबन्ध में ऐतिहासिक शोध पद्धति का अध्ययन किया जाएगा, जोकि ऐतिहासिक व विकासात्मक अध्ययन से संबंधित है। जिसमें विभिन्न कारकों के मध्य संबंधों की व्याख्या एवं उनके मध्य गत्यात्मक क्रिया का प्रसंगवार विवेचन किया जाएगा। इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण पुस्तकों, ग्रन्थों, पत्र–पत्रिकाओं का प्रयोग आवश्यक है, जिसके लिए हरियाणा प्रदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों, शोध केन्द्रों, और पुस्तकालयों का सहयोग लिया जाएगा। प्राथमिक स्त्रोतों की सहायता ली जाएगी। इस अध्ययन के दौरान सार्थक पुस्तकों, शोध ग्रन्थों, लेखों, रिपोर्ट, दस्तावेजों और अन्य स्रोतों की सहायता ली जाएगी, जिससे अध्ययन में समग्रता का समावेश होगा। अपने शोध के लिए विषय की वस्तु को प्राचीन मूल ग्रन्थों, टीकाओं, अभिलेखों आदि से प्राप्त किया जाएगा।

आधुनिक काल के विद्वानों द्वारा लिखित सहायक ग्रन्थों से भी सहायता प्राप्त की जाएगी।

(7) पूर्ववर्ती शोध साहित्य का पुनरावलोकन :

शोध समस्या को समुचित रूप से प्रस्तुत करने के लिए इस शोध समस्या से सम्बन्धित पूर्ववर्ती साहित्य का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक होता है। समस्या चयन करने में सम्बन्धित साहित्य के अवलोकन की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। इसी धारणा को ध्यान में रखकर पूर्ववर्ती शोध साहित्य का अध्ययन किया गया जिससे शोध को उपयुक्त दिशा प्रदान की जा सके और यह अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल होकर सुफल देने में समर्थ हो सके। पूर्ववर्ती शोध

साहित्य के पुनरावलोकन के सन्दर्भ में जॉन डब्ल्यू बेस्ट ने कहा है– ''व्यावहारिक रूप से सारा मानव ज्ञान प्राप्त होता है पुस्तकों और पुस्तकालयों में। व्यक्ति संचित ज्ञान राशि के आधार पर प्रगति करता है, जबकि जानवरों को अपना जीवन प्रत्येक संतति से न रूप में शुरू करना पड़ता है।''[6]

पूर्ववर्ती शोध साहित्य के अध्ययन से ज्ञात हुआ कि भारत में शिक्षा के क्षेत्र में शोधकार्य का इतिहास अधिक प्राचीन नहीं है। हमारी शिक्षा की मुख्य समस्याएँ जैसे कि पाठ्यक्रम–निर्माण, विषय–वस्तु, शिक्षण विधियाँ, मूल्यांकन, परीक्षण रीति और निर्देशन, छात्रों का भौतिक कल्याण, सभी भाषाओं और पाठ्य–पुस्तकों का अध्ययन इन सभी को आगे बढ़ाने के लिए शोधकार्य की नितान्त आवश्यकता है। किन्तु इन समस्याओं की ओर उत्साहजनक दृष्टिकोण आज के विद्वान नहीं कर पाए हैं। इसका एक प्रमुख कारण यह हो सकता है कि हमारे समाज में व्यक्ति अभी तकनीकी विकास में बहुत पीछे है, किन्तु अब वो दिन दूर नहीं जब हम भी इसकी ओर अग्रसर होंगे।

(8) शोध अध्ययन की सीमाएँ :

1. शोध का क्षेत्र बहुत व्यापक है। अतः प्रस्तुत अध्ययन में प्राचीनकाल के प्रमुख शिक्षा केन्द्रो की शिक्षा व्यवस्था का ही अध्ययन किया गया है, सभी का नहीं।
2. प्रस्तुत अध्ययन को शिक्षा केन्द्रों के शैक्षिक व प्रबन्धन सम्बन्धी विचारों व व्यवस्थाओं तक ही सीमित रखा गया है।
3. शोध अध्ययन में शिक्षण संस्थाओं के अन्तर्गत चलने वाली शिक्षा व्यवस्था का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।
4. प्राचीन काल में शिक्षण संस्थाओं में प्रयोग होने वाली शिक्षा पद्धतियों के अध्ययन तक सीमित रखा गया है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन को उपर्युक्त बिन्दुओं तक ही सीमित रखा गया है।

(9) अध्ययन रूपरेखा :

प्रस्तुत शोध को 9 अध्यायों में विभक्त किया गया है–

1. प्रथम अध्याय : प्रस्तावना
2. द्वितीय अध्याय : विषय प्रवेश – मानव सभ्यता का आदि केन्द्र : भारत
3. तृतीय अध्याय : प्राचीन भारत में शिक्षा का स्वरूप
4. चतुर्थ अध्याय : प्राचीन पाठन विधियाँ तथा पाठ्य सामग्री
5. पंचम अध्याय : प्राचीन भारत के प्रमुख शिक्षा केन्द्र
6. षष्टम् अध्याय : शिक्षा केन्द्रों का आर्थिक एवं शैक्षणिक प्रबन्धन
7. सप्तम् अध्याय : विदेशी यात्रियों द्वारा भारतीय शिक्षा सम्बन्धी विचार
8. अष्टम् अध्याय : प्राचीन शिक्षा की प्रमुख विशेषताएँ तथा महत्व
9. नवम् अध्याय : आधुनिक युग में प्राचीन भारतीय शिक्षा की प्रासंगिकता

उपसंहार

संदर्भ ग्रंथ–सूची

संदर्भ

1. डी.एन. श्रीवास्तव, अनुसंधान की विधियां, साहित्य प्रकाशन, आगरा
2. वही
3. वही
4. वही
5. वही
6. मनीषा सैनी, बौद्ध शिक्षा दर्शन का समीक्षात्मक अध्ययन, शोध प्रबन्ध, दूरवर्ती शिक्षा निदेशालय, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (दिसम्बर 2010)

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लज्जाराम तोमर, प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, सुरुचि प्रकाशन, देशबन्धु गुप्ता मार्ग, नई दिल्ली, 2000
2. रामजी उपाध्याय, प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1965
3. कृष्ण कुमार, प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली, 1999
4. अंगुत्तरनिकाय
5. अग्निपुराण
6. अथर्ववेद
7. अमरकोश (माहेश्वरी टीका सहित), निर्णय सागर प्रेस, मुंबई
8. अर्थशास्त्र (कौटिल्य) गणपति शास्त्री कृत टीका सहित
9. आपस्तम्ब गृह्यसूत्र
10. आपस्तम्ब धर्मसूत्र
11. आपस्तम्ब श्रौतसूत्र
12. ईशापनिषद्
13. ऋग्वदे
14. ऐतरेय उपनिषद्
15. ऐतरेय ब्राह्मण
16. कठोपनिषद्
17. काठक संहिता
18. किरातार्जुनीयम् (भारवि)
19. केनोपनिषद्

20. कौषीतकि उपनिषद्
21. कौषीतकि ब्राह्मण
22. गोपथ ब्राह्मण
23. गोभिल गृह्यसूत्र
24. गौतम धर्मसूत्र
25. जैन महापुराण
26. जैमिनीयसूत्र (मीमांसासूत्र)
27. तन्त्रवार्तिक (कुमारिल भट्‌ट)
28. नारदस्मृति
29. निरूक्त (यास्क)
30. पद्‌पुराण
31. पराशर गृह्यसूत्र
32. पाणिनीय शिक्षा
33. पारस्कर गृह्यसूत्र
34. बौधायन धर्मसूत्र
35. भगवद्‌गीता
36. भारद्वाज गृह्यसूत्र
37. मण्डूकोपनिषद्
38. मनुस्मृति – कुल्लूकभट्‌टकृत टीका सहित
39. यजुर्वेद
40. याज्ञवल्क्यस्मृति – मिताक्षरा टीका सहित
41. वसिष्ठ धर्मसूत्र
42. वाजसनेयि संहिता
43. वायुपुराण

44. विष्णु धर्मसूत्र
45. व्यवहारमयूख – भगवद्भास्कर (नीलकण्ठ)
46. शतपथ ब्राह्मण
47. वासुदेवशरण अग्रवाल, पाणिनिकालीन भारतवर्ष (संवत् 2012)
48. अलतेकर, अनंत सदाशिव, एजुकेशन इन एशिएंट इंडिया, 1948
49. वही, भारतीय शिक्षण पद्धति, नंदकिशोर एंड संस, 1968
50. एफ.ई. कीथ, एशिएंट इंडियन एजुकेशन, लंदन, 1915
51. कृष्णकुमार, प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास, 1993
52. जयदयाल, स्त्रियों के लिए कर्त्तव्य और शिक्षा, गीता प्रैस गोरखपुर
53. पी.के. जायसवाल, मनु एंड याज्ञवल्क्य, कलकत्ता, 1930
54. एम.के. दास, दी एजुकेशन ऑफ दी एशिएंट हिंदूज, 1930
55. पी. के. दास, ऋग्वैदिक कल्चर
56. रामधारी सिंह दिनकर, भारतीय संस्कृति के चार अध्याय
57. जवाहर लाल नेहरू, द डिस्कवरी ऑफ इंडिया, लंदन, 1956
58. ए.एल. बाशम, दी वंडर दैट वाज इंडिया, 1959
59. सर जोन मार्शल, टैक्सिला वो. 1–3, मोतीलाल बनारसीदास, 1975
60. विलियम मोनियर, हिंदू विज्डम, 1912
61. डेविड्स रीज, बुद्धिस्ट इंडिया, 1950
62. राधा कुमुद मुकर्जी, एन्शिएन्ट इंडियन एजुकेशन, 1947
63. थामस वाटर्स, आन ह्वेन्त्सांगस ट्रेवल्स इन इंडिया, रायल एशियाटिक सोसाइटी, 1940, 1905
64. वेदमित्र, एजुकेशन इन एशिएंट इंडिया, आर्य बुक डिपो, दिल्ली, 1964
65. सत्यप्रकाश, प्राचीन भारतीय संस्कृति व सभ्यता
66. एच.डी. सांकलिया, नालंदा यूनिवर्सिटी

67. ए. बिश्वास, कम्पेरेटिव एजुकेशन, आर्य बुक डिपो, दिल्ली, 1995
68. ए.पी. शर्मा, शिक्षा दर्शन, राजस्थान प्रकाशक, जयपुर, 1999
69. राजेन्द्र शर्मा, शिक्षा दर्शन, साहित्यागार, जयपुर, 1999
70. मालती सारस्वत, माध्यमिक शिक्षा सिद्धान्त, आलोक प्रकाशन, 1999
71. सरयू प्रसाद चौबे, भारत हेतु शिक्षा दर्शन, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 1998
72. जे.सी. अग्रवाल, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 20000
73. एस.सी. गुप्ता, इमर्जिंग चैलेन्जस इन एजुकेशन, आर्य बुक डिपो, दिल्ली, 1998
74. एन.एल. गुप्ता, क्रिएटीविटी एण्ड वैल्युज एजुकेशनल प्रॉसपैक्टिव, आर्य बुक डिपो, दिल्ली, 2001
75. एन. वैंकटैय्या, वैल्यू एजुकेशन, ए.पी.एच. पब्लिकेशन्स कारपोरेशन, नई दिल्ली, 1998
76. एन.एल. गुप्ता, ए सर्च फॉर ह्युमन वैल्युज, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, 2001
77. पी.डी. शुक्ला, एजुकेशन फॉर ऑल, एस. पब्लिकेशन्स प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली, 1996
78. एच.एस. बैंस, शिक्षा की रूपरेखा, आ. पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1991
79. वी.के. राव, लाइफलांग एजुकेशन, ए.पी.एच. पब्लिकेशन्स कारपोरेशन, नई दिल्ली, 2001
80. वी.एस. माथुर, स्टडीज़ इन इंडियन एजुकेशन, आर्य बुक डिपो, दिल्ली, 2001
81. एस. नरायन, एक्जामिनेशन इन एशिएंट इंडिया, आर्य बुक डिपो, दिल्ली, 1993
82. सत्यपाल रूहेला, भारतीय शिक्षा का समाजशास्त्र, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1992
83. अशोक अ. लाल, सृजनशील जीवन और शिक्षा, जे. बुक ट्रस्ट इंडिया, 1989

84. ए. विश्वास, इंडियन एजुकेशन डॉक्यमैंट्स सिन्स इंडीपेन्डैन्स, द ऐकेडिमक पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1987

85. बी.आर. गर्ग, पॉलिसी डॉक्यूमैंटस ऑन इंडियन एजुकेशन, द एसोशिएटिड पब्लिकेशन्स, अम्बाला कैंट, 2001

86. बी.डी. पंत, डेमोक्रेटिक प्रिंसीपल एण्ड एजुकेशनल सुपरवाइजर, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, 1993

87. जे.सी. अग्रवाल, ए सोर्स बुक ऑफ इंडियन एजुकेशन, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, 1987

88. बी.आर. गर्ग, भारत में शिक्षा संरचना, भारती विद्या विहार

89. आर.पी. सिंह, प्रोफेशनल एजुकेशन इन एशिएंट इंडिया एण्ड मेडिवल इंडिया, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, 1991

90. आर.पी. भटनागर, शैक्षिक प्रशासन, लायल बुक डिपो, मेरठ, 1998